दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

सि.वि.(मु) सं.265/2009

निर्णय की तिथि: 12 जनवरी, 2010

सरदार खुशवंत सिंह और अन्य ....याचीगण

द्वारा: श्री पी.एस. बिंद्रा, अधिवक्ता

बनाम

किरपाल सिंह ....प्रत्यर्थी

द्वारा: श्री जे.के. जैन, अधिवक्ता

कोरम:-

माननीय श्री न्यायमूर्ति राजीव सहाय एंडलॉ

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? हाँ
2. रिपोर्टर के पास भेजा जाना है या नहीं? हाँ
3. क्या निर्णय को डायजेस्ट में दिया जाना चाहिए? हाँ

<u>न्या., राजीव सहाय एंडलॉ</u>

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस याचिका को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष लंबित एक प्रोबेट मामले में आक्षेपकर्ता द्वारा प्राथमिकता दी गई है और यह अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के दिनांक 31

जनवरी, 2009 के आदेश से व्यथित है, जिसमें सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के तहत याचिकाकर्ता/आक्षेपकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

2. यहाँ प्रत्यर्थी ने जनवरी, 2008 में/या लगभग 20 नवंबर, 1974 को सर सोभा सिंह की विल के प्रोबेट के अनुदान हेतु आवेदन किया, जिसकी मृत्यु 18 अप्रैल, 1978 को हुई थी। इस प्रकार प्रोबेट के अनुदान हेतु याचिका कथित विल के निष्पादक की मृत्यु के लगभग 30 वर्षों के बाद दायर की गई थी।

3. जिस विल के लिए प्रोबेट मांगा गया था वह "दान का विलेख" है। उक्त दस्तावेज़ का उद्येश्य प्रत्यर्थी, संत कृपाल सिंह को प्रिय उद्देश्यों के लिए महर्षि रमन मार्ग, नई दिल्ली में सुजान सिंह पार्क में स्थित 165'x111' माप की भूमि का एक भूखंड उपहार में देना है। दस्तावेज़ में अभिलिखित है कि निष्पादक ने उक्त भूखंड का कब्ज़ा प्रत्यर्थी संत कृपाल सिंह को उस पर निर्माण-कार्य करने के अधिकार के साथ सौंप दिया था। दस्तावेज़ यह भी घोषित करता है कि निष्पादक की मृत्यु के बाद, कोई भी व्यक्ति या व्यक्तिगत क्षमता वाला कोई भी व्यक्ति उपरोक्त भूमि के भूखंड पर दावा करने या सरोकार रखने का हकदार नहीं होगा। दस्तावेज़ दान विलेख को अप्रतिसंहरणीय घोषित करता है। दस्तावेज़ पर कथित तौर पर दो साक्षियों के हस्ताक्षर हैं और यह अपंजीकृत है।

4. उपरोक्त दस्तावेज प्रत्यर्थी द्वारा 4 दिसंबर, 1993 को दायर किए गए वाद का विषय था। उक्त वाद सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड के अलावा नई दिल्ली नगर निगम, भूमि एवं विकास कार्यालय और मैसर्स सिंह

सभा (पंजीकृत), सुजान सिंह पार्क, नई दिल्ली के विरुद्ध दायर किया गया था। उक्त वाद में प्रत्यर्थी ने उपरोक्त भूमि पर वाद में प्रतिवादियों द्वारा शुरू किए गए निर्माण के संबंध में स्थायी और अनिवार्य व्यादेश की डिक्री की मांग की और प्रतिवादियों द्वारा पहले से ही शुरू किए गए निर्माण-कार्य को हटाने हेतु अनिवार्य व्यादेश की भी मांग की। प्रत्यर्थी, जो उस वाद में वादी था, ने पूर्वोक्त दान विलेख के आधार पर भूमि पर स्वामित्व का दावा किया।

5. उस वाद में प्रतिवादी सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड ने सर सोनभा सिंह द्वारा दान के विलेख के निष्पादन का प्रत्याख्यान किया और प्रत्यर्थी के पास भूमि का कब्जा होने का भी प्रत्याख्यान किया। यह कहा गया था कि प्रत्यर्थी सुजान सिंह पार्क में गुरुद्वारे के पीछे एक कमरे/कोठरी में अतिचारी था और उक्त कमरे/कोठरी पर कब्जे के लिए वाद दायर किया गया था; आगे अभिवाक् दिया गया कि प्रत्यर्थी ने जबरन और अवैध रूप से गुरुद्वारे की छत पर एक कच्चा कमरा भी बनाया था और जिसके संबंध में एक और वाद दायर किया गया था। सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड ने भारत के राष्ट्रपति द्वारा अपने पक्ष में निष्पादित पट्टे के स्थायी विलेख के आधार पर उपरोक्त भूमि का स्वामी होने का दावा किया, जो कि बहुत बड़ी भूमि का अहम भाग था।

6. प्रत्यर्थी द्वारा स्थापित उपरोक्त वाद दिल्ली के सिविल न्यायाधीश के दिनांक 15 जुलाई, 2002 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था। वाद को

खारिज करते समय, यह अभिनिर्धारित किया गया कि भूमि एवं विकास कार्यालय के साक्षी ने सर सोभा सिंह एंड संस लिमिटेड के पक्ष में उपरोक्त भूमि के स्थायी पट्टे की पुष्टि की थी; उस वाद में प्रत्यर्थी/वादी ने अपनी प्रति-परीक्षा में स्वीकार किया था कि गुरुद्वारे में कोठरी/कमरे पर कब्जे के लिए उसके विरुद्ध वाद का निर्णय दिया गया था; यद्यपि यह वाद प्रत्यर्थी द्वारा यह दावा करते हुए दायर किया गया था कि सर सोभा सिंह ने पूर्वोक्त दान विलेख के माध्यम से उन्हें उपरोक्त भूमि का भूखंड उपहार में दिया था और जो उपहार पंजीकृत दस्तावेज़ के न होने के कारण विधि द्वारा मान्य नहीं था, साक्षी के रूप में उपस्थित प्रत्यर्थी ने दस्तावेज को विल करार दिया। सिविल न्यायाधीश ने मृतक सर सोभा सिंह की 22 फरवरी, 1953 की वैध रूप से निष्पादित अंतिम विल की प्रोबेट को एक विल होने के कारण दान के विलेख के प्रत्यर्थी के दावे को नकार दिया और प्रत्यर्थी ने उस विल के प्रोबेट के अनुदान हेतु कोई आक्षेप नहीं किया।

7. रिकॉर्ड से पता चलता है कि प्रत्यर्थी ने वाद को खारिज करने वाले निर्णय/डिक्री के विरुद्ध अपील दायर की। उक्त अपील को दिल्ली के अतिरिक्त वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश के न्यायालय के दिनांक 14 मई, 2003 के निर्णय द्वारा भी खारिज कर दिया गया था। अपील को खारिज करते हुए, न्यायालय ने उपरोक्त दान विलेख की वास्तविक प्रकृति और आशय पर विचार किया, अर्थात् क्या यह प्रत्यर्थी द्वारा मूल रूप से प्रस्तुत किया गया उपहार था या

एक विल थी जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा अपने साक्ष्य में अभिसाक्ष्य दिया गया था। उक्त दस्तावेज़ के निर्माण पर अपीलीय न्यायालय ने इसे उपहार के रूप में संरचित अभिनिर्धारित किया और उपहार को पंजीकृत न होने के कारण अमान्य करार दिया। यह आगे अभिनिर्धारित किया गया कि दस्तावेज के विल होने के साक्ष्य में प्रत्यर्थी के अभिवाक् को भी इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि प्रत्यर्थी दस्तावेज को विल के रूप में प्रमाणित करने में विफल रहा है और जैसा कि यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 67 और 68 द्वारा अपेक्षित है। अपीलीय न्यायालय ने भी दस्तावेज को प्रामाणिक नहीं माना। अपीलीय न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि मृतक सर सोभा सिंह को उपरोक्त दस्तावेज के माध्यम से भूमि के भूखंड का कोई भी अधिकार हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, जिसमें उनका स्वयं का कोई अधिकार न हो और यह स्थापित हो गया था कि भूमि का स्थायी पट्टा सर सोभा सिंह एंड संस लिमिटेड के पक्ष में था; अपीलीय न्यायालय के निर्णय में यह भी अभिलिखित किया गया है कि इसमें प्रत्यर्थी ने उक्त तथ्य को चुनौती नहीं दी थी। अपीलीय न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी यह प्रमाणित करने में विफल रहा कि उक्त भूखंड पर उसका किसी भी समय कब्ज़ा था या यह उसके कब्जे में था। विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय दोनों ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी उस भूमि को परिलक्षित करने में विफल रहा है जिस पर अधिकार का दावा किया गया था।

8. प्रत्यर्थी ने अपनी उपरोक्त अपील को खारिज करने के विरुद्ध इस न्यायालय में नियमित द्वितीय अपील संख्या 134/2003 प्रस्तुत की। उक्त द्वितीय अपील को इस न्यायालय के दिनांक 6 अगस्त, 2003 के आदेश द्वारा आरंभ से ही खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि निचले न्यायालयों ने दस्तावेज़ की संवीक्षा की थी और समवर्ती रूप से इसे एक उपहार विलेख माना था, न कि विल तथा उक्त निष्कर्ष दूसरी अपील में हस्तक्षेप के लिए मुक्त नहीं था।

9. प्रत्यर्थी ने अपनी द्वितीय अपील को खारिज करने के आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका सं.20876/2003 दायर की। उक्त विशेष अनुमति याचिका भी आरंभ से ही 9 फरवरी, 2004 को खारिज कर दी गई थी। एक पुनर्विलोकन याचिका(सि) सं.674/2004 भी 31 मार्च, 2004 को खारिज कर दी गई थी। लगभग चार वर्षों की प्रतीक्षा के बाद, प्रोबेट याचिका जिसमें से यह याचिका उद्भूत हुई है, जनवरी, 2008 को पूर्वोक्त के रूप में दायर की गई थी।

10. यद्यपि उपरोक्त मुकदमेबाजी के पहले चरण में, यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि सर सोबा सिंह एंड संस लिमिटेड भूमि का स्वामी था और यह प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में भी अभिलिखित है कि प्रत्यर्थी ने उक्त तथ्य पर अभियोजित नहीं किया था किंतु प्रोबेट याचिका में प्रत्यर्थी ने सर सोभा सिंह एंड संस लिमिटेड को प्रोबेट मामले में एक पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया। मृतक सर सोभा सिंह के नैसर्गिक वारिसों को

प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया गया था और जिन्होंने सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के तहत आक्षेपों के साथ-साथ आवेदन को प्राथमिकता दी थी। प्रोबेट याचिका की अस्वीकृति की मांग अन्य बातों के साथ-साथ (i) न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के आधार पर की गई थी (ii) पुनःमुकदमा दायर करने के प्रयास में की गई थी (iii) दस्तावेज़ को प्रमाणित करने का प्रयास होने के बाद जैसा कि ऊपर कहा गया है, मुकदमेबाजी के पहले चरण में सिविल वाद के माध्यम से इसे प्रमाणित करने में विफल रहा (iv) मुकदमेबाजी के पहले चरण में यह अभिनिर्धारित किया गया कि दस्तावेज़ विल नहीं था, उसके प्रोबेट हेतु याचिका संधार्य नहीं थी (v) प्रोबेट के लिए याचिका समय-वर्जित हो रही है (vi) कथित विल के ज़रिये दी गई संपत्ति के कारण कार्यवाही निरर्थक हो रही है, माना जाता है कि यह मृतक की नहीं है और सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड के स्वामित्व में है।

11. यद्यपि प्रोबेट हेतु याचिका को समय-वर्जित करने की याचिका को प्रोबेट याचिका की अस्वीकृति हेतु भी लिया गया था और जो ***कुंवरजीत सिंह खंडपुर बनाम किरणदीप कौर*** एआईआर 2008 एससी 2058 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अब निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए एक वैध आधार है, लेकिन याचीगण ने विचारण न्यायालय के समक्ष सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के तहत आवेदन पर बहस करते समय, ***एस.एस. लाल बनाम श्री विष्णु मित्तर गोविल*** 2004 V एडी दिल्ली 509 में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय

को देखते हुए उक्त आधार पर अस्वीकृति के लिए दबाव नहीं डाला। भले ही इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा निर्धारित विधि अब **कुंवरजीत सिंह खंडपुर** (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के विपरीत निर्णय को देखते हुए एक मान्य विधि नहीं है, याचीगण ने विचारण न्यायालय के समक्ष उक्त याचिका पर जोर नहीं दिया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस याचिका को उक्त याचिका से असंबद्ध माना जाता है।

12. प्रारंभ में प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने **रंजीत सिंह बनाम रवि प्रकाश** एआईआर 2004 एससी 3892 पर भरोसा करते हुए कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उत्प्रेषण क्षेत्राधिकार और पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का क्षेत्राधिकार उपलब्ध था और इसका उपयोग अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय की त्रुटियों को ठीक करने के लिए नहीं किया जा सकता था, जैसा कि अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय संभव है। वह ***मेयर (एच.के.) लिमिटेड बनाम स्वामियों और पक्षों***, ***वेसल एम.वी. फॉर्च्यून*** 2006 एसएआर (सिविल) 209 (एससी), ***सी. नटराजन बनाम आशिम बाई*** 2007 एसएआर (सिविल) 952 (एससी), ***राम प्रकाश गुप्ता बनाम राजीव कुमार गुप्ता*** 2007 एआईएआर (सिविल) 828 (एससी), ***सोपान सुखदेव साबले बनाम सहायक चैरिटी आयुक्त*** 2004 एसएआर (सिविल) 228 (एससी), ***अब्दुल गफूर बनाम उत्तराखंड राज्य*** 2008 एसएआर (सिविल) 843 (एससी), ***पोपट और कोटेचा प्रॉपर्टी बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया स्टाफ एसोसिएशन*** 2005 एसएआर (सिविल) 744 (एससी)

और ***पियरी लाल वर्कशॉप प्राइवेट लिमिटेड बनाम आर.एस.ए. सरन*** 2009 आरएलआर 216, सभी सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के सामान्य सिद्धांतों पर और विवादग्रस्त प्रश्न इस स्तर पर निर्णय लेने में सक्षम नहीं हैं।

13. इसके विपरीत, याचीगण के अधिवक्ता ने ***संजय कौशीश बनाम डी.सी.कौशीश*** 48 (1992) डीएलटी 414 (पैराग्राफ 14) पर भरोसा करते हुए कहा कि जहां, सि.प्र.सं. के आदेश 10 के तहत दर्ज बयान में वाद-पत्र और स्वीकार किए गए दस्तावेजों और तथ्यों को पढ़ने से, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि वाद-पत्र वाद हेतुक को प्रकट नहीं करता है या वाद परिसीमा या अन्यथा द्वारा वर्जित है, संधार्य न होने पर न्यायालय बिना कोई साक्ष्य अभिलिखित किए भी उक्त विषय-बिंदु तय कर सकता है।

14. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता का प्रतिविरोध है कि सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के तहत अस्वीकृति के उद्देश्य से केवल प्रोबेट याचिका और कुछ भी नहीं देखा जाना है और यदि वर्तमान मामले में प्रोबेट की मांग करने वाली याचिका को देखा जाता है, तो यह वाद-हेतुक प्रकट करता है और इसे विचारण न्यायालय के समक्ष याचीगण द्वारा दी गई परिसीमा का बिंदु पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह प्रतिविरोध किया जाता है कि विल का प्रमाण केवल एक प्रोबेट न्यायालय के समक्ष होना चाहिए, न कि सिविल न्यायालय के समक्ष और इस प्रकार मुकदमेबाजी के पहले चरण में सिविल न्यायालय के निष्कर्षों के रूप में पूर्वोक्त दस्तावेज, एक विल होने का दावा करता है, प्रमाणित न होने

का निष्प्रयोजन नहीं है। आगे यह प्रतिविरोध किया गया है कि दस्तावेज़ के प्रमाण हेतु मुकदमेबाजी के पहले चरण में विभिन्न न्यायालयों के आदेश परस्पर विरोधी हैं। यह आग्रह किया जाता है कि मृतक सर सोभा सिंह की 22 फरवरी, 1953 की विल की दी गई प्रोबेट भी प्रत्यर्थी के मार्ग में नहीं आती है क्योंकि उक्त विल केवल कनॉट प्लेस में सर सोभा सिंह ब्लॉक में मृतक की संपत्ति के बराबर थी और विल की संपत्ति विषय-वस्तु के रूप में नहीं थी जिसकी प्रोबेट अब मांगी गई है।

15. इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि याचीगण द्वारा प्रोबेट हेतु याचिका को इस आधार पर भी अस्वीकृत करने की मांग की गई थी कि याचिका न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग है। इसे एक ऐसा आधार माना गया है जो न्यायालयों को अपने समक्ष लाई गई कार्यवाही को खारिज करने का अधिकार प्रदान करता है यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि यह न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग है। किसी भी व्यक्ति को विधिक कार्यवाही के लंबित रहने और दूसरों के प्रति पूर्वाग्रह से निहित लाभ प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। पुनः मुक़दमा दायर करना निश्चित रूप से न्यायालय की कार्यवाही का दुरूपयोग है। ***के.के. मोदी बनाम के.एन. मोदी*** एआईआर 1998 एससी 1297 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पुनः मुक़दमा दायर करना न्याय और लोक नीति के विपरीत है और किसी पक्ष के लिए उसी मुद्दे को पुनः प्रारंभ करने की अनुमति नहीं है जिसका पहले ही

उसके विरुद्ध विचारण किया जा चुका है और फैसला किया जा चुका है। सर्वोच्च न्यायालय ने ***टी.अरिंडम बनाम टीवी सत्यपाल*** एआईआर 1977 एससी 2421 और ***लिवरपूल एंड लंदन एसपी एंड आई एसोसिएशन लिमिटेड बनाम एमवी सी सक्सेस आई*** (2004) 9 एससीसी 512 में अभिनिर्धारित किया है कि जिन कार्यवाहियों की सफलता की कोई संभावना नहीं है और/या जो अवांछित है और अभिशप्त हैं, उन्हें जल्द से जल्द अमान्य कर दिया जाना चाहिए और न्यायालय के संसाधनों को अवरूद्ध करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और और न्यायालय के ध्यान की आवश्यकता वाले अन्य योग्य मामलों की कीमत पर और इसे परेशान करने के उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

16. मैं संतुष्ट हूं कि पूर्वोक्त प्रकाश में देखा गया वर्तमान मामला प्रोबेट हेतु याचिका की श्रेणी में आता है, जो न केवल न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग है, किंतु दस्तावेज़ को प्रमाणित करने में सफल होने पर भी प्रत्यर्थी को कोई लाभ प्राप्त करने की कोई संभावना नहीं है।

17. पहले दूसरे पहलू को लेते हुए, मुकदमेबाजी के पहले चरण में विभिन्न न्यायालयों के निर्णयों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह स्थापित होता है कि दान का विलेख नामक दस्तावेज की संपत्ति विषय-वस्तु मृतक सर सोभा सिंह के जीवनकाल में भी थी, साथ ही अब सर सोभा सिंह एंड संस लिमिटेड से संबंधित है और जिसे बाद में सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड के नाम

से जाना जाता था। जैसा कि ऊपर देखा गया है, मुकदमेबाजी के पहले चरण में प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से अभिलिखित किया गया है कि प्रत्यर्थी ने उक्त तथ्य पर कोई विवाद नहीं किया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय के उक्त निष्कर्ष को दूसरी अपील या सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में विक्षुब्ध नहीं किया गया है और अब यह निश्चायक है और प्रत्यर्थी पर बाध्यकारी है। एक बार जब यह स्थापित हो जाता है और प्रत्यर्थी पर बाध्यकारी हो जाता है कि संपत्ति सर सोभा सिंह एंड संस लिमिटेड की है, भले ही प्रत्यर्थी यह स्थापित करने में सफल हो जाए कि दस्तावेज़ एक विल है और कोई अमान्य उपहार नहीं है और/या इसे प्रमाणित करने में, प्रत्यर्थी द्वारा अब भी सर सोभा सिंह के कारण वहां से कोई लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता है, जिन्होंने वहां की संपत्ति को अपने अधीन अंतरित/वसीयत करने का दावा किया है, जबकि उनके पास इसके संबंध में कोई अधिकार नहीं है।

18. इस संबंध में यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थी ने भी मुकदमेबाजी के पहले चरण में सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड के साथ मुकदमा चलाने का विकल्प चुना, न कि सर सोभा सिंह के नैसर्गिक वारिसों के साथ। यदि सर सोभा सिंह संपत्ति के स्वामी होते, तो उनकी मृत्यु के बाद और किसी विल की अनुपस्थिति में यह उनके नैसर्गिक वारिसों के हिस्से में आ जाता और प्रत्यर्थी ने मुकदमे के पहले चरण में अपने अधिकारों को स्थापित करने की मांग करते हुए सर सोभा सिंह के नैसर्गिक वारिसों को वाद में पक्षकार बना दिया होता।

प्रत्यर्थी ने ऐसा करने का विकल्प नहीं चुना और लिमिटेड कंपनी के साथ मुकदमा करने का विकल्प चुना। प्रत्यर्थी को अब सर सोभा सिंह के नैसर्गिक वारिसों के साथ दूसरे चरण की अनुमति नहीं दी जा सकती। इस प्रकार, मेरे अनुसार याचिका उक्त कारण से अभिशप्त हुई है और इसे अन्य योग्य मामलों के मूल्य पर न्यायालयों में लेकर आने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रोबेट की मांग करने वाली याचिका अकेले इस आधार पर संक्षिप्त प्रत्याख्यान के योग्य है।

19. वर्तमान मामला स्पष्ट रूप से पुनः मुकदमेबाजी का मामला है। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता का यह प्रतिविरोध कि विल की मौलिकता और प्रामाणिकता केवल प्रोबेट कार्यवाही में स्थापित की जानी है, मेरे अनुकूल नहीं है। ***बिहारी लाल रामचरण बनाम करम चंद साहनी*** एआईआर 1968 पी एंड एच (दिल्ली में) 108 (डीबी) और ***राजन सूरी बनाम राज्य*** एआईआर 2006 दिल्ली 148 में अभिनिर्धारित और ***बनवारी लाल चैरिटेबल ट्रस्ट बनाम भारत संघ*** एमएएनयू/डीई/2515/2009 के हालिया आदेश में दोहराया गया है कि जहां तक दिल्ली शहर का संबंध है, विल के तहत अधिकारों का दावा करने/प्रख्यान हेतु प्रोबेट आवश्यक नहीं है। प्रोबेट की अनुपस्थिति में भी, विल के तहत ऐसे अधिकारों को एक संपार्श्विक कार्यवाही में स्थापित किया जा सकता है जिसमें विल प्रश्नगत हो। देखें ***पृथीपाल सिंह सभरवाल बनाम जगजीत सिंह सभरवाल*** एमएएनयू/डीई/0851/1996.

20. मुकदमेबाजी के पहले चरण में न्यायालयों के निर्णयों के पठन से यह स्पष्ट है कि दस्तावेज़ की वैधता, प्रामाणिकता, मौलिकता काफ़ी प्रश्नगत थी। उन कार्यवाहियों में वादी के रूप में प्रत्यर्थी ने संपत्ति पर अपने अधिकारों के दावे में उक्त दस्तावेज़ पर भरोसा किया और उस वाद में प्रतिवादियों ने इसका प्रत्याख्यान किया। यद्यपि मुकदमेबाजी के पहले क्रम में विचारण न्यायालय ने इस विषय पर निर्णय नहीं सुनाया कि क्या दस्तावेज विधि के अनुसार प्रमाणित हुआ था या नहीं और केवल 22 फरवरी, 1953 की विल की प्रोबेट को ध्यान में रखते हुए इसे उपहार के रूप में अमान्य और विल के रूप में अमान्य माना गया था, लेकिन प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रत्यर्थी को सुस्पष्ट रूप से दस्तावेज प्रमाणित करने में विफल माना और इस कारण से विल के तहत वह किसी भी अधिकार का दावा करने का हकदार भी नहीं है। प्रथम अपीलीय न्यायालय के उक्त निष्कर्ष को दूसरी अपील या विशेष अनुमति याचिका में अभिशप्त नहीं किया गया है। प्रत्यर्थी मुकदमेबाजी के पहले चरण में भी यद्यपि एक सिविल वाद से यह स्थापित करने के लिए हकदार था कि दस्तावेज़ एक विल थी और मृतक के वाद में संपत्ति हेतु वैध रूप से निष्पादित विल थी। प्रत्यर्थी ऐसा करने में विफल रहा। सिविल न्यायालय में विल स्थापित करने का अवसर पाने के बाद, प्रत्यर्थी इसके बाद प्रोबेट मांगने का हकदार नहीं है। प्रोबेट न्यायालय विल की मौलिकता और वैधता से संबद्ध है; किंतु उक्त मौलिकता और वैधता पहले की सिविल कार्यवाही की विषय-वस्तु भी थी। एक पक्ष जो अवसर होने के बावजूद सिविल कार्यवाही में विल प्रमाणित करने में

विफल रहता है, वह प्रोबेट न्यायालय के समक्ष दूसरे चरण का हकदार नहीं है। जैसा कि पूर्वोक्त प्रस्तुत है, जहां तक दिल्ली शहर का संबंध है, प्रोबेट न्यायालय अनन्य क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय नहीं है जहां विल प्रमाणित की जा सकती है। वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी ने सिविल न्यायालय में विल प्रमाणित करने का विकल्प चुना। यद्यपि उसने दस्तावेज़ का एक उपहार होने का दावा करते हुए वाद दायर किया था, परंतु अपने अभिसाक्ष्य में उसने दावा किया कि यह एक विल है। उसने एक अन्य कार्यवाही में अनुप्रमाणक साक्षी में से एक के अभिसाक्ष्य के माध्यम से इसे प्रमाणित करने की भी मांग की। सिविल न्यायालय ने दस्तावेज़ को विल के रूप में प्रमाणित नहीं पाया। सिविल न्यायालय का उक्त निष्कर्ष अब प्रोबेट न्यायालय के समक्ष कम से कम प्रत्यर्थी के विरुद्ध पूर्व न्याय(रेस जूडीकेटा) है। प्रत्यर्थी ने मृतक सर सोभा सिंह के नैसर्गिक वासियों को सिविल वाद के पक्षकारों के रूप में पक्षकार नहीं बनाया है, यदि विल के मुकदमेबाजी के पहले चरण में इसे वापस कर दिया गया था, तो यह निष्कर्ष मृतक के उक्त विधिक वारिसों पर बाध्यकारी नहीं होता, परंतु फिर भी प्रत्यर्थी पर बाध्यकारी है।

21. प्रोबेट की मांग केवल विल से की जा सकती है। यदि प्रोबेट न्यायालय के समक्ष यह विवादग्रस्त है कि जिस दस्तावेज़ का प्रोबेट मांगा गया है वह विल है या नहीं, तो प्रोबेट न्यायालय उसका न्यायनिर्णयन करेगा। जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, दिल्ली शहर में उक्त क्षेत्राधिकार सिविल न्यायालयों तक भी

विस्तृत है जिसमें विल स्थापित की जा सकती है। मुकदमेबाजी के पहले चरण में सिविल न्यायालयों ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि दस्तावेज़ विल नहीं है। इस न्यायालय में दूसरी अपील के आदेश में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है। प्रत्यर्थी को अब दस्तावेज़ को विल बताकर प्रोबेट न्यायालय के समक्ष दूसरे चरण की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक बार सिविल न्यायालय का यह निष्कर्ष कि दस्तावेज़ विल नहीं है, प्रत्यर्थी पर बाध्यकारी माना जाता है, तो प्रत्यर्थी दस्तावेज़ के विल होने का दावा करने के लिए प्रोबेट न्यायालय में दूसरे चरण का हकदार नहीं है। इस प्रकार, इन दोनों मामलों में प्रोबेट हेतु याचिका पुन: मुकदमेबाजी की व्याधि से ग्रस्त पाई जाती है।

22. इस प्रकार प्रोबेट न्यायालय ने यह मानने में गलती कर दी कि उपरोक्त सभी पहलू जो निर्णयों से सामने आए हैं, उनका प्रवारण कर दिया जाना चाहिए और प्रोबेट याचिका पर विचारण किया जाना चाहिए। प्रोबेट याचिका न केवल सि.प्र.सं. के आदेश 7 नियम 11 के तहत संक्षिप्त रूप से खारिज करने के लिए उत्तरदायी थी, अपितु जैसा कि ऊपर उद्धृत निर्णय में भी, इस तरह की तुच्छ मुकदमेबाजी को खत्म करने के लिए न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में भी अभिनिर्धारित किया गया है। ***सरदार एस्टेट बनाम आत्मा राम प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड*** (2009) 6 एससीसी 609 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि तुच्छ आधार पर मुकदमेबाजी का दूसरा चरण प्रारंभ करना न्यायालय की कार्यवाही का घोर दुरुपयोग है और यह प्रक्रिया

व्यापक हो गई है और इसे न्यायालय अनुमोदित नहीं कर सकता, अन्यथा कोई भी निर्णय कभी भी अंतिम नहीं हो पाएगा।

23. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय के प्रत्यर्थी के अधिवक्ता का प्रतिविरोध विचारण न्यायालय के आदेशों में हस्तक्षेप करने का हकदार नहीं है, वर्तमान में वास्तव में एक क्लासिक मामला पाया जाता है जहां इस प्रकार की शक्तियों का प्रयोग इस न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थी पर स्पष्ट रूप से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने और पुन: मुकदमेबाजी में शामिल होने का आरोप लगाया गया है। मैं उल्लेख कर सकता हूं कि न केवल ऊपर उल्लिखित मुकदमेबाजी का पहला चरण, अपितु इसी प्रकार के मुद्दे कमरे/कोठरी के कब्जे के लिए सर सोभा सिंह एंड संस प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध दायर वाद भी न्यायनिर्णयन हेतु था और जिन पर निर्णय सुनाया गया था। उक्त वाद में प्रत्यर्थी का प्रतिवाद उपरोक्त दस्तावेज़ के आधार पर स्वामित्व का था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रत्यर्थी उपरोक्त दस्तावेज़ को प्रमाणित करने में विफल रहा है।

24. यह याचिका सफल होती है और सर सोभा सिंह की 17 अप्रैल, 1954 की कथित विल की प्रोबेट की याचिका को संक्षेपतः अस्वीकृत/खारिज कर दिया जाता है। इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी पर याचीगण को देय 25,000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया गया है।

राजीव सहाय एंडलॉ
(न्यायाधीश)

12 जनवरी, 2010
जीएसआर

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*